

महाबीर गोप और अन्य

बनाम

हरबंस नारायण सिंह और अन्य

1952, 14 अप्रैल

[मेहर चंद महाजन, चंद्रशेखर अय्यर और विवियन बोस, न्यायमूर्तिगण]

बिहार काश्तकारी अधिनियम, 1937, धाराएं 5(2), 20, 21 - जरपेशगी पट्टा - बंधकदार द्वारा 3 वर्ष की अवधि के लिए दिया गया पट्टा - पट्टेदार का 30 वर्षों से अधिक समय तक कब्जे में रहना - क्या अधिभोग अधिकार प्राप्त होते हैं - पट्टे का निर्वचन - पट्टा देने की बंधकदार की शक्ति - सीमाएं - संपत्ति अंतरण अधिनियम (1882 का IV), धारा 76 (क) और (ड)।

एक सामान्य नियम के रूप में, कोई भी व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति को स्वयं के पास मौजूद अधिकार से बेहतर स्वत्व अंतरित या प्रदान नहीं कर सकता है, और इसलिए एक बंधकदार बंधक संपत्ति में ऐसा कोई हित सृजित नहीं कर सकता जो बंधकदार के रूप में उसके हित की समाप्ति के बाद भी बना रहे। इसके अतिरिक्त, बंधक की अवधि के दौरान बंधकदार बंधककर्ता के हितों के प्रतिकूल कार्य नहीं कर सकता, जैसे कि ऐसा पट्टा देना जिससे काश्तकार को भूमि में स्थायी अधिभोग अधिकार प्राप्त करने में सक्षमता मिल जाए, जिससे बंधककर्ता का 'खास कब्जे' का अधिकार विफल हो जाए।

एक बंधकदार द्वारा उचित प्रबंधन के क्रम में काश्तकार के साथ किया गया अनुमेय बंदोबस्त और भूमि की प्रकृति तथा आवश्यक अवधि तक कब्जे के आधार पर कानून द्वारा प्रदत्त अधिकारों का उत्पन्न होना सामान्य नियम का एक अपवाद है, लेकिन इस अपवाद के अंतर्गत आने के लिए बंधकदार द्वारा काश्तकार का बंदोबस्त सद्भावपूर्ण होना चाहिए। यह अपवाद उस मामले में लागू नहीं होगा जहाँ बंधक की शर्तें स्पष्ट रूप से या आवश्यक निहितार्थ द्वारा बंधकदार को भूमि पर काश्तकारों का बंदोबस्त करने से प्रतिबंधित करती हैं।

जहाँ एक ज़रपेशगी इजारा विलेख में निम्नलिखित खंड शामिल था: "यह वांछित है कि इजारादार को इजारा में दी गई हिस्सेदारी (जो उनके स्वयं की खेती के अधीन खुदकाशत भूमि है) पर कब्जा और दखल प्राप्त करना चाहिए, उनमें खेती करनी चाहिए, हमें यानी निष्पादकों को प्रति वर्ष 2 आने आरक्षित लगान के रूप में देना चाहिए, और इजारा हित होने के कारण उसकी उपज का वर्ष-दर-वर्ष उपभोग करना चाहिए।" और उस काशतकार द्वारा निष्पादित कबूलियत, जिसे बंधकदार द्वारा 3 वर्ष की अवधि के लिए भूमि पट्टे पर दी गई थी, में इजारा विलेख का संदर्भ दिया गया था और उसमें यह स्पष्ट प्रावधान था कि वह (काशतकार) पट्टे की समाप्ति पर बिना किसी दावे के 'तिका' भूमि का कब्जा छोड़ देगा कि वे भूमि उसकी 'काशत' भूमि थी: उच्च न्यायालय के निर्णय की पुष्टि करते हुए यह निर्धारित किया गया कि यह बंदोबस्त सद्भावपूर्ण (बोनाफाइड) नहीं था और काशतकार के उत्तराधिकारियों (प्रतिवादियों) ने बिहार काशतकारी अधिनियम के तहत पट्टे पर दी गई भूमि में स्थायी अधिभोग अधिकार प्राप्त नहीं किए, भले ही भूमि पट्टे की समाप्ति के बाद 30 वर्षों से अधिक समय तक काशतकार और उसके उत्तराधिकारियों के कब्जे में रही हो।

आगे यह निर्धारित किया गया कि प्रतिवादी बिहार काशतकारी अधिनियम की धारा 20 और 21 के तहत अधिभोग अधिकार प्राप्त नहीं कर सकते थे क्योंकि बंधकदार न तो "स्वामी" था और न ही "तन्ज़ीमदार" या "उप-तन्ज़ीमदार", और इसलिए काशतकार और उसके उत्तराधिकारी उक्त अधिनियम की धारा 5, खंड (2) के अर्थ के भीतर "स्थायी रैयत" नहीं थे।

मंज़िल-लाल विश्वनाथ शाह देव बनाम शेख मोहिउद्दीन (आई.एल.आर. 24 सी ए एल. 272), बाबू बैरो नाथ राय बनाम शंके पाहन (आई.एल.आर. 8 पी.ए.टी. 31) और बिंदा लाल पाकराशी और अन्य बनाम कालू प्रमाणिक और अन्य (आई.एल.आर. 20 सी ए एल. 708) को अलग माना गया।

दीवानी अपीलीय क्षेत्राधिकार: 1951 की दीवानी अपील संख्या 143। पटना उच्च

न्यायालय के क्षेत्राधिकार (रुबेन और जमुआर, न्यायमूर्तिगण) द्वारा मूल डिक्री संख्या 206/1946 में अपील पर दिए गए 23 मार्च, 1950 के निर्णय और डिक्री के विरुद्ध विशेष अनुमति द्वारा अपील, जो कि स्वत्व वाद संख्या 55/4 (1943-45) में पटना के अधीनस्थ न्यायाधीश की 31 जनवरी, 1946 की डिक्री से उत्पन्न हुई थी।

अपीलकर्ताओं की ओर से सैयद मुर्तजा फजल अली।

उत्तरदाता संख्या 1 से 9 की ओर से एन. सी. चटर्जी (ए. एन. सिन्हा उनके साथ)।

उत्तरदाता संख्या 11 से 16 की ओर से बी. के. सरण।

1952, 14 अप्रैल। न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति चंद्रशेखर अय्यर द्वारा सुनाया गया।

चंद्रशेखर अय्यर, न्यायमूर्ति - यह प्रतिवादियों द्वारा पटना उच्च न्यायालय की उस डिक्री के विरुद्ध अपील है, जिसने पटना की अधीनस्थ न्यायाधीश न्यायालय की डिक्री को उलट दिया था, और वादियों के पक्ष में 'गोप' कहे जाने वाले प्रथम पक्ष के प्रतिवादियों के विरुद्ध कब्जे का मुकदमा डिक्री कर दिया था।

ये भूमियाँ *खुदकाशत* भूमियाँ थीं, जो आंशिक रूप से प्रथम पक्ष के वादियों की थीं और आंशिक रूप से *मुसम्मात* अनारों कुँअर की थीं, जिनसे द्वितीय और तृतीय पक्ष के वादी स्वत्व प्राप्त करते हैं। प्रथम पक्ष के वादियों के पूर्वजों ने 28-9-1899 को प्रदर्श (बी) के तहत द्वितीय पक्ष के प्रतिवादी के पूर्वज लखनदेव सिंह को 1307 फसली से 1312 फसली तक छह वर्ष की अवधि के लिए 540 रुपये में कब्जे के साथ इजारा दिया था। *पेशगी* की राशि 1312 फसली के अंत में एकमुश्त वापस की जानी थी। यदि मोचन (रिडेम्पशन) नहीं होता, तो धन वापस होने तक इजारा लागू रहना था। *मुसम्मात* अनारों कुँअर ने अपना हिस्सा उसी लखनदेव सिंह को 10 जून, 1905 को मौखिक रूप से तीन वर्ष की अवधि के लिए 542 रुपये में इजारा दिया था। लखनदेव सिंह ने, जिसका प्रतिनिधित्व अब द्वितीय पक्ष के प्रतिवादी द्वारा किया जाता है, इस प्रकार प्राप्त भूमि (कुल 8.26 एकड़ या 13 बीघा) का बंदोबस्त प्रथम पक्ष के प्रतिवादी के पूर्वज राम लाल गोप के साथ फसली 1315 से फसली

1318 तक तीन वर्ष की अवधि के लिए किया। काश्तकार के पक्ष में एक पट्टा और जमींदार के पक्ष में एक कबूलियत थी। यह 1908 की बात है। संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 83 के तहत कार्यवाही में भुगतान करके जून 1942 में बंधक का मोचन कर दिया गया था। जब वादी कब्जा लेने गए, तो गोपों (प्रथम पक्ष के प्रतिवादी) द्वारा उनका विरोध किया गया, और असफल आपराधिक कार्यवाहियों के बाद, वादियों ने वर्तमान वाद दायर किया। अधीनस्थ न्यायाधीश ने यह मानते हुए इसे खारिज कर दिया कि गोप रैयत थे और बंधकदार लखनदेव सिंह द्वारा किए गए बंदोबस्त के परिणामस्वरूप उन्होंने भूमि में स्थायी अधिभोग अधिकार प्राप्त कर लिए थे। अपील पर, उच्च न्यायालय ने इस निर्णय को रद्द कर दिया और वादियों को कब्जे की डिक्री दी, यह निष्कर्ष निकालते हुए कि प्रतिवादी रैयत नहीं थे और उनके पास अधिभोग का कोई स्थायी अधिकार नहीं था। इस न्यायालय ने प्रतिवादियों को अपील करने की विशेष अनुमति प्रदान की।

मुकदमा वैकल्पिक रूप से द्वितीय पक्ष के प्रतिवादी से मुआवजे या हर्जाने के रूप में भूमि के मूल्य की वसूली के लिए था, यदि यह पाया जाता कि प्रथम पक्ष के प्रतिवादी को बेदखल नहीं किया जा सकता था। विचारण न्यायालय ने इस वैकल्पिक दावे को डिक्री कर दिया और वादियों को 200 रुपये प्रति बीघा की दर से मुआवजा प्रदान किया। द्वितीय पक्ष के प्रतिवादी इस मामले को अपील में उच्च न्यायालय ले गए और सफल रहे। परंतु वर्तमान अपील में हमारा इस मामले से कोई सरोकार नहीं है।

विचारण के दौरान, वादियों ने आरोप लगाया और यह तर्क दिया कि ये भूमियाँ बिहार काश्तकारी अधिनियम की धारा 116 के अर्थ के भीतर उनकी 'जीरात' भूमियाँ थीं और प्रथम पक्ष के प्रतिवादी उनमें अधिभोग का कोई अधिकार प्राप्त नहीं कर सकते थे। अधीनस्थ न्यायाधीश ने इस तर्क के विरुद्ध निर्णय दिया और माना कि वे स्वामी की *खुदकाश्त* या *बकाश्त* भूमियाँ थीं, जिनमें अधिभोग के अधिकार प्राप्त किए जा सकते हैं। उन्होंने प्रतिवादियों के इस तर्क को खारिज कर दिया कि वे उनकी पैतृक *रैयती* भूमियाँ थीं। उन्होंने यह भी

माना कि भूमि के बंदोबस्त के मामले में बंधकदार लखनदेव सिंह और राम लाल गोप के बीच कोई मिलीभगत नहीं थी। इन्हीं निष्कर्षों के आधार पर, जिन्हें दोनों पक्षों ने स्वीकार कर लिया था, उच्च न्यायालय के समक्ष अपील की सुनवाई आगे बढी।

प्रिवी काउंसिल द्वारा *बंगाल इंडिगो कंपनी बनाम रघोपुर दास* में यह निर्धारित किया गया था कि "एक *जरपेशगी* पट्टा केवल लगान पर भूमि की खेती का अनुबंध नहीं है, बल्कि अग्रिम धन के लिए काश्तकार हेतु एक प्रतिभूति है।" उन्होंने अपने समक्ष पट्टों के बारे में टिप्पणी करते हुए कहा कि "विचाराधीन पट्टे केवल पट्टे पर दी गई भूमि की खेती के लिए अनुबंध नहीं थे; बल्कि वे काश्तकार द्वारा दी गई मूल राशि और उस पर ब्याज के लिए एक वास्तविक और वैध प्रतिभूति के रूप में भी अभिप्रेत थे और गठित किए गए थे। उनके तहत काश्तकारों का कब्जा, कम से कम आंशिक रूप से, केवल खेती करने वालों के रूप में नहीं था, बल्कि अपनी प्रतिभूति के माध्यम से उन्हें देय ऋण की अदायगी करने वाले ऋणदाताओं के रूप में था।" ये शब्द हमारे समक्ष प्रस्तुत इजारा विलेख पर लागू होते हैं; इसका मुख्य उद्देश्य दिए गए ऋण के लिए प्रतिभूति प्रदान करना था न कि मकान मालिक और काश्तकार के बीच किसी संबंध को अस्तित्व में लाना।

सामान्य नियम यह है कि कोई व्यक्ति अंतरण द्वारा या अन्यथा किसी अन्य व्यक्ति को स्वयं के पास मौजूद अधिकार से बेहतर स्वत्व प्रदान नहीं कर सकता। इसलिए, एक बंधकदार बंधक संपत्ति में ऐसा कोई हित सृजित नहीं कर सकता जो बंधकदार के रूप में उसके हित की समाप्ति के बाद भी बना रहे। इसके अतिरिक्त, जो बंधकदार बंधक संपत्ति का कब्जा लेता है, उसे उसका प्रबंधन उसी प्रकार करना चाहिए जैसे सामान्य विवेक वाला व्यक्ति स्वयं की संपत्ति होने पर करता; और उसे ऐसा कोई कार्य नहीं करना चाहिए जो संपत्ति के लिए विनाशकारी हो या उसे स्थायी रूप से नुकसान पहुँचाने वाला हो; संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 76, उप-धारा (क) और (ड) देखें। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि वह ऐसी अवधि के लिए पट्टा दे सकता है जो बंधक की अवधि से अधिक न हो; उसके द्वारा

दिया गया कोई भी पट्टा बंधक के मोचन पर समाप्त हो जाना चाहिए। बंधक की निरंतरता के दौरान बंधकदार बंधककर्ता के हितों के लिए हानिकारक तरीके से कार्य नहीं कर सकता, जैसे कि ऐसा पट्टा देना जिससे काश्तकार को भूमि में स्थायी या अधिभोग अधिकार प्राप्त करने में सक्षमता मिल जाए, जिससे बंधककर्ता का 'खास कब्जे' का अधिकार विफल हो जाए; यह एक ऐसा कार्य होगा जो संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 76, उप-धारा (ड) के प्रावधानों के अंतर्गत आएगा।

उचित प्रबंधन के क्रम में कब्जे वाले बंधकदार द्वारा काश्तकार के साथ किया गया एक अनुमेय बंदोबस्त और भूमि की प्रकृति तथा आवश्यक अवधि तक कब्जे के आधार पर कानून द्वारा प्रदत्त या सृजित अधिकारों का उत्पन्न होना, पूरी तरह से एक अलग मामला है। यह सामान्य नियम का एक अपवाद है। बंधक के मोचन के बाद भी बंधककर्ता द्वारा काश्तकार को बेदखल नहीं किया जा सकता है। वह कुछ मामलों में अधिभोगी रैयत और अन्य मामलों में गैर-अधिभोगी रैयत बन सकता है। लेकिन बंधकदार द्वारा काश्तकार का बंदोबस्त सद्भावपूर्ण होना चाहिए। यह अपवाद उस मामले में लागू नहीं होगा जहाँ बंधक की शर्तें स्पष्ट रूप से या आवश्यक निहितार्थ द्वारा बंधकदार को भूमि पर काश्तकारों का बंदोबस्त करने से प्रतिबंधित करती हैं।

जहाँ बंधकदार को सभी ज़मींदारी अधिकार दे दिए जाते हैं, वहाँ दस्तावेज़ के उचित अर्थ के आधार पर यह निष्कर्ष निकालना संभव हो सकता है कि वह प्रबंधन के सामान्य क्रम में काश्तकारों के साथ भूमि का बंदोबस्त कर सकता है और काश्तकार अपनी क्षमता के अनुसार भूमि में कुछ अधिकार प्राप्त कर सकते हैं। *मंज़िल-लाल विश्वनाथ शाह देव बनाम शेख मोहिउद्दीन*¹ के मामले में, बंधकदार द्वारा काश्तकारों के साथ बंधक रखी गई रैयती भूमि का सद्भावपूर्ण बंदोबस्त किया गया था और यह निर्धारित किया गया था कि बंधककर्ता मोचन के बाद उन्हें बेदखल करने का हकदार नहीं था। *'बाबू भीरो नाथ राय बनाम शंके*

1 (1927) 8 पी.ए.टी.एल.टी. 92.

पाहन⁽²⁾) का पिछला निर्णय 'बकाशत' भूमि से संबंधित था, और उस जरपेशगी पट्टे में काशतकारों के बंदोबस्त के संबंध में बंधकदार पट्टेदार की शक्ति को प्रतिबंधित करने वाला कोई प्रावधान नहीं था। 'खुदकाशत' और 'बकाशत' भूमि वास्तव में रैयती भूमि की प्रकृति की होती है जो समर्पण, परित्याग या खरीद द्वारा स्वामी के कब्जे में आती है।

वर्तमान मामले में, इजारा विलेख में निम्नलिखित खंड मौजूद है: "यह वांछित है कि इजारदार को इजारा में दी गई हिस्सेदारी (जो उनके स्वयं की खेती के अधीन खुदकाशत भूमि है) पर कब्जा और दखल प्राप्त करना चाहिए, उनमें खेती करनी चाहिए, हमें यानी निष्पादकों को प्रति वर्ष 2 आने आरक्षित लगान के रूप में देना चाहिए, और इजारा हित होने के कारण उसकी उपज का वर्ष-दर-वर्ष उपभोग करना चाहिए।" यह शर्त बंधकदार को बंधक रखी गई भूमि पर काशतकारों को बसाने से वंचित करती है। प्रतिवादी प्रथम पक्ष के दादा राम लाल गोप, जिन्होंने 1908 में कबूलियत निष्पादित की थी, उन्हें बंधकदार लखनदेव सिंह के स्वत्व और उन शर्तों का ज्ञान होना चाहिए था जिनके तहत वह पंजीकृत जरपेशगी इजारा विलेख के माध्यम से भूमि धारण किए हुए थे; और संभवतः यही कारण है कि काशतकार ने न केवल 3 वर्ष की अवधि के लिए पट्टा लिया, बल्कि स्पष्ट रूप से पट्टे की अवधि समाप्त होने पर 'तिका' भूमि का कब्जा छोड़ने का वचन दिया, बिना इस आधार पर कोई दावा किए कि वे भूमि उसकी पुरानी 'काशत' भूमि थी। उनकी कबूलियत (प्रदर्श 11) वास्तव में लखनदेव सिंह के इजारदारी हित का संदर्भ देती है। इन तथ्यों को देखते हुए, उच्च न्यायालय के विद्वान न्यायाधीशों ने कहा कि वे यह मानने के लिए तैयार नहीं थे कि यह बंदोबस्त सद्भावपूर्ण था या बंधकदार इन भूमियों का बंदोबस्त करने के अपने अधिकारों के भीतर था।

अपीलकर्ताओं की ओर से पूर्ण पीठ के निर्णय - बिनाद लाल पाकराशी और अन्य बनाम कालू प्रमाणिक और अन्य⁽³⁾ पर गहरा भरोसा जताया गया, जहाँ यह निर्धारित किया

2 (1929) आई.एल.आर. 8 पी ए टी. 31.

3 (1893) आई.एल.आर. 20 सी ए एल. 708.

गया था कि एक अतिक्रमणकारी द्वारा भी रैयत के रूप में भूमि पर काबिज कराया गया व्यक्ति बंगाल काश्तकारी अधिनियम की धारा 5, उप-धारा 2 के अर्थ के भीतर गैर-अधिभोगी रैयत बन जाता है और उसे बेदखली से सुरक्षा प्राप्त होती है। लेकिन इस निर्णय को बाद में कई मामलों में इस प्रस्ताव पर आधारित बताकर स्पष्ट किया गया है कि अधिकार उन व्यक्तियों से सद्भावपूर्वक प्राप्त किए गए होने चाहिए, जिन्हें वे सद्भावपूर्वक भूमि पर कब्जा देने का अधिकार रखने वाला मानते थे। हालाँकि, लखनदेव सिंह के पक्ष में इजारा विलेख और राम लाल गोप द्वारा *कबूलियत* में किए गए उल्लेखों को देखते हुए, वर्तमान मामले में ऐसी स्थिति नहीं है।

अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा अपने तर्कों के दौरान बिहार काश्तकारी अधिनियम की धारा 20 और 21 का संदर्भ दिया गया और उन्होंने बताया कि इस मामले में भूमि 1908 से 1942 तक निरंतर उनके मुवक्किलों और उनके पूर्वजों द्वारा धारण की गई थी, जब उन्हें बेदखल करने की मांग की गई थी। इन धाराओं के लागू होने के लिए, हमें यह मानने की स्थिति में होना चाहिए कि अपीलकर्ता "स्थायी रैयत" थे। धारा 5 की उप-धारा 2 में "रैयत" को परिभाषित किया गया है जिसका अर्थ है "मुख्य रूप से वह व्यक्ति जिसने स्वयं या अपने परिवार के सदस्यों द्वारा खेती करने के उद्देश्य से भूमि धारण करने का अधिकार प्राप्त किया है..."। उप-धारा 3 यह प्रावधान करती है कि किसी व्यक्ति को तब तक रैयत नहीं माना जाएगा जब तक कि वह भूमि या तो सीधे स्वामी के अधीन या सीधे तन्जीमदार के अधीन धारण न करता हो। लखनदेव सिंह "स्वामी" नहीं था, जिस शब्द का अर्थ वह व्यक्ति है जो किसी संपदा या संपदा के हिस्से का मालिक है, चाहे वह ट्रस्ट में हो या अपने लाभ के लिए; वह केवल एक बंधकदार था। न ही वह 'तन्जीमदार' या 'उप-तन्जीमदार' था, क्योंकि वह धारा 5 की उप-धारा (1) में दी गई परिभाषा का पालन नहीं करता है, अर्थात् वह व्यक्ति जिसने स्वामी या किसी अन्य तन्जीमदार से लगान वसूलने के उद्देश्य से, या काश्तकारों को स्थापित करके भूमि को खेती के अधीन लाने के उद्देश्य से भूमि

धारण करने का अधिकार प्राप्त किया हो। इस मामले में जो भी प्रमाण हैं, वे केवल यह दर्शाते हैं कि भूमियाँ वादियों की खेती के अधीन थीं और उन्हें बंधकदार के कब्जे में इस प्रकार सौंपा गया था कि वह स्वयं उन पर खेती कर सके। अतः, राम लाल गोप यह दावा नहीं कर सकता था कि वह गाँव का स्थायी रैयत था और कानून के तहत उसने उन भूमियों पर अधिभोग अधिकार प्राप्त कर लिए थे जिन्हें उसने लखनदेव सिंह से पट्टे पर लिया था।

अंत में, यह तर्क दिया गया कि मुसम्मात अनारों कुँअर द्वारा किया गया इजारा स्वीकार्य रूप से एक मौखिक लेनदेन था और जहाँ तक उनके हिस्से (3.97 एकड़) का संबंध था, काश्तकारों के साथ बंदोबस्त के विरुद्ध किसी भी निषेध का कोई प्रमाण नहीं था, और इस क्षेत्र के संबंध में पक्षों के अधिकार, प्रथम पक्ष के वादी की 4 एकड़ और 29 सेंट भूमि के अधिकारों से भिन्न आधार पर होंगे। यह बिंदु नीचे की अदालतों में नहीं उठाया गया था, जहाँ लखनदेव सिंह को दिए गए दो इजारा सौदों को इस तरह माना गया था मानो वे एक ही लेनदेन के अभिन्न अंग हों, और उनके अधिकार एवं दायित्व, जो भी थे, दोनों के लिए समान थे। हम इस समय यह बिंदु उठाने की अनुमति नहीं दे सकते।

परिणामस्वरूप, उच्च न्यायालय की डिक्री की पुष्टि की जाती है और अपील वादी-प्रतिवादियों के खर्च के साथ खारिज की जाती है। अन्य प्रतिवादियों के खर्च के संबंध में कोई आदेश नहीं होगा।

अपील खारिज।

अपीलकर्ताओं के अभिकर्ता : एस. पी. वर्मा।

प्रतिवादी संख्या 1 से 9 के अभिकर्ता : एम. एम. सिन्हा।

प्रतिवादी संख्या 11 से 16 के अभिकर्ता : के. एल. मेहता।

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नहीं किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।